आलेख

वेदों में पर्यावरण चेतना

डॉ. राजबीर सिंह, महाप्रबंधक (राजभाषा)
राजभाषा विभाग, निगम मुख्यालय

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की अत्यधिक महत्ता रही है। हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मनीषियों–महर्षियों ने मानव जीवन के कल्याण और सुख के लिए पर्यावरण के महत्व और प्रकृति के सानिध्य के महत्व को समझा था। भारतीय संस्कृति का आधार वैदिक युग रहा है और उसका मूल स्रोत हैं वेद। वेदों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वेदकालीन समाज में पर्यावरण के महत्व और उसकी रक्षा के प्रति अत्यधिक जागरूकता थी। पर्यावरण प्रदूषण के खतरों के प्रति तत्कालीन समाज काफी सचेत था। उस काल में भूमि को ईश्वर के रूप में पूजनीय माना जाता था। वेदों में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है – 'भूमि जिसकी पादस्थानीय और अंतरिक्ष उदर के समान है और द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।' वेदों में प्रकृति और पुरुष का संबंध परस्पर एक दूसरे पर आधारित माना गया है। प्रकृति और विभिन्न वस्तुओं के अनुकूल रहन–सहन और खान–पान का सम्यक् वर्णन वेदों में मिलता है।

आज पर्यावरण–प्रदूषण सम्पूर्ण विश्व में एक गंभीर समस्या है। चारों ओर प्रदूषण फैलाने वाले तत्व नजर आते हैं, उसकी रोकथाम अपेक्षाकृत नगण्य है। मानव जाति जिस दिशा की ओर अग्रसर है, उसे देखते हुए लगता है कि वह समय दूर नहीं जब समस्त जैवमंडल विनाश के मुंह में होगा।

हाल ही में प्रकाशित एक रिर्पोट में यह खुलासा हुआ है कि दुनिया के 30 सबसे प्रदूषित शहरों में 21 भारत में हैं। आई. क्यू. एयर विजुअल की ओर से तैयार की गई 2019 की वर्ल्ड एयर क्वॉलिटी रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में सबसे प्रदूषित शहर गाजियाबाद है। दूसरे स्थान पर चीन का होतन शहर तथा तीसरे स्थान पर पाकिस्तान का गुजरांवाला शहर है। दिल्ली दुनिया का पांचवां सबसे प्रदूषित शहर है।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है *'चारों ओर से वरण अथवा आवरण अथवा अधिकार अथवा भरण करना।* प्राकृतिक तत्वों यथा वायु, जल, वर्षा, भूमि, नदी, पर्वत इत्यादि से संपूर्ण जैवमंडल का सुरक्षा कवच प्रकृति ने हमें दिया है किन्तु हम प्रकृति से प्राप्त संरक्षण और सुरक्षा को नष्ट करने में लगे हैं।

मनुष्य प्रकृति के अनियंत्रित दोहन में लगा हुआ है। हमारे प्राचीन वाङ्मय में प्रकृति का संतुलन बनाए रखने के लिए बारबार आह्वान मिलता है–मनुष्य अपनी इच्छाओं को वश में रखकर प्रकृति से उतना ही ग्रहण करे कि उसकी पूर्णता को क्षति न पहुंचे। पर्यावरण के तीन मूलभूत कारक–मृदा, वायु तथा अग्नि को वेदों में *पृथ्वीलोक, अन्तरिक्षलोक* तथा *द्युलोक* अथवा *आदित्य लोक* के रूप में चित्रित किया गया है जो सर्वव्यापक शक्ति अर्थात् विष्णु द्वारा रचित तथा संरक्षित है। बलि से दान में विष्णु ने तीन कदम में तीनों लोकों का अधिग्रहण कर लिया था जो वास्तव में इनके संरक्षण का ही प्रतीक है। वेदों में कहा गया है कि हम जाने–अनजाने ऐसा कुछ न करें जो विध्वंसक हो यदि कोई ऐसा कार्य हमसे हो जाए, जो सृष्टि के संरक्षण के प्रतिकूल हो, तो द्यावा पृथ्वी हमारी रक्षा करें।

ऋग्वेद में पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में बहुत सी जगह आशंका या भय व्यक्त किया गया है जिससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदों के रचयिता को मानव जाति से पर्यावरण को खतरे की आशंका बराबर बनी हुई थी। इसमें प्रयुक्त *'दूरितात'* और *'अभ्यात्'* जैसे पद इसी आशंका को दर्शाते हैं और इसमें किसी अज्ञात पाप से रक्षा का आह्वान भी है। वस्तुतः यह मानव द्वारा पृथ्वी के प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन की अवहेलना से उद्भूत पाप है, जो कदापि क्षम्य नहीं है और इसमें मानव के कृत्यों से पर्यावरण की रक्षा की याचना की प्रतीति होती है।

मानव और पर्यावरण

वेदों में मनुष्यों के संबंध में उल्लेख किया गया है कि

मानव ऐश्वर्य, सुख–वैभव और समृद्धि का अभिलाषी है और अपने ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए प्रकृति के संरक्षण के प्रति लापरवाह भी। प्रकृति अपनी रक्षा करने में समर्थ है। *द्युलोक, पृथ्वीलोक* और अन्य परम शक्तियां *अग्नि* को अपनी सुरक्षा के लिए नियुक्त करती हैं (*ऋग्वेद 3.6.3*)। यों तो मनुष्य अपने लिए प्रदूषण रहित, दोष रहित द्युलोक और पृथ्वीलोक चाहता है जो दृढ़ दाण्डों से चलाई गई छिद्र रहित नाव की भांति सुरक्षित, पाप रहित, सुख, ऐश्वर्य तथा उत्तम आचरण से युक्त मजबूत आधार वाला हो – *सुत्रामाणंपृथिवी द्यामनेहसं सुखर्माणमदिति ..... रुहेमा स्वस्तये* (*ऋग्वेद 0.63.10*) किन्तु मनुष्य ने अपनी आवश्यकताएं इतनी बढ़ा ली हैं कि उनकी पूर्ति पर्यावरण के लिए खतरा बन गई हैं और प्रकृति को विनाश की तरफ धकेल रही हैं।

आज वैज्ञानिक ओजोन परत में हुए छिद्र के बारे में जो चिंता प्रकट कर रहे हैं, वस्तुतः वेदों में इस संबंध में बहुत पहले सचेत किया गया था। पृथ्वी का हृदय परम व्योम में स्थित है *यस्या हृदयं परमें व्योमन्* (*अथर्ववेद 12.1.8*) का अभिप्राय यही है कि जिस तरह हृदय की धड़कन पर प्राणी का जीवन निर्भर है उसी प्रकार अंतरिक्ष रूपी हृदय के नष्ट होते ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड का नाश निश्चित है। आज इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को माता या देवी का रूप दिया, उसे मातृवत् पूज्य माना। उस प्रकृति के सारे कार्य भूमि (पृथ्वी) द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। अतः भूमि ही प्रकृति का प्रथम तत्व है। ऋग्वेद में 'भूमि' को *माता* व *'द्यौ'* को पिता कहा गया है। पृथ्वी सभी प्राणियों की हित सम्पादिका होने से 'अदिति' कहलाई। वेदों में वृक्षों के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। पेड़ों में चेतन तत्व माना है। वृक्ष कार्बन–डाई–ऑक्साइड को ऑक्सीजन में परिवर्तित करके मानव जीवन के लिए अमूल्य योगदान देते हैं।

भारतीय संस्कृति में *वट, पीपल, आंवला* आदि वृक्षों का पूजन करने का यही अभिप्राय है कि ये सर्वाधिक आक्सीजन प्रदान करके मानव–जीवन की रक्षा करते हैं। हिन्दू धर्म में प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा लगाने की सलाह दी गई है जिसका वैज्ञानिक कारण है – अर्थात् तुलसी का पौधा ही संसार का एकमात्र पौधा है जो दिन और रात दोनों समय ऑक्सीजन छोड़ता है तथा उसकी पत्तियां प्रकाश संश्लेषण द्वारा सर्वाधिक मात्रा में सौर ऊर्जा शोषित करती हैं। फलतः ऋषियों ने जनमानस में इस धारणा को बल दिया कि तुलसी में लक्ष्मी व विष्णु दोनों का निवास है। ये पौधे वाष्प विसर्जन द्वारा वातावरण में नमी बनाए रखते हैं जिससे समय–समय पर वर्षा होती रहती है तथा मृदाक्षरण भी नहीं होता है।

पर्यावरण और अग्निहोत्र

वायु शुद्धि के लिए वेदों में अग्निहोत्र का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। वायुमण्डल में फैले विषाणुओं/कीटाणुओं का अवशोषण करके अग्निहोत्र वातावरण को स्वच्छ और सुगन्धित बनाते हैं। आधुनिक युग में जबकि चारों ओर विषैले और प्रदूषित वातावरण में सांस लेना कठिन है – अग्निहोत्र की महत्ता एवं आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। भारतीय संस्कृति में वातावरण की शुद्धि के लिए अग्निहोत्र को अनिवार्य मानते हुए कहा गया है कि जहां सब स्त्री पुरुष एक मन रह कर पुण्यात्मा पुरुषार्थी होकर अग्निहोत्र करते हैं, *कुकृतामग्निहोत्रहुतां* अर्थात् वेद मंत्रों से अग्नि में मिष्ट सुगंध द्रव्य चढ़ा कर वायुशुद्धि करते हैं और अग्निविद्या द्वारा अग्निनौका, अग्नियान, विमान आदि रचते हैं, वहां सुमति के निवास से सब जन आनन्द भोगते हैं।

अग्निहोत्र *शुद्ध घी* एवं *सुगन्धित, वायुशोधक, रोगनिवारक* पदार्थों की आहुति द्वारा संपन्न किया जाता है। अग्निहोत्र वह है जिसमें अग्नि में *वायुशोधक* या *रोगकृमिनाशक* पदार्थों का होम किया जाता है। यह मंत्रपाठ पूर्वक भी हो सकता है और चिकित्सा शास्त्रीय दृष्टि में भी। दोनों ही स्थितियों में मानव के लिए हितकारक है। आयुर्वेद के *चरक, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर* आदि ग्रन्थों में ऐसे कई योग वर्णित हैं, जिनकी आहुति अग्नि में देने से वायुमंडल शुद्ध होता है तथा श्वास द्वारा धूनी अंदर लेने से रोग दूर होते हैं। वेदों में अनेक स्थानों पर अग्नि को पावक, रोग विनाशक, पावकशोचिष आदि विशेषणों से उसकी शोधक शक्ति का उल्लेख किया गया है। यज्ञ का फल चतुर्दिक् फैलता है– *यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा* (*यजु. 8.62*)। अग्निहोत्र औषधि का कार्य सम्पन्न करता है– *अग्निष्कृणोतु भेषजम्* (*अथर्व. 6.106.3*) अग्निहोत्र से

शरीर की कमजोरी दूर होती है– *अग्ने यन्मे तन्वा ऊन तन्म आपृण* (*यजु. 3.17*) अग्नि वायुमण्डल से समस्त दूषक तत्वों का उन्मूलन करती है– *अग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि* (*ऋग्. 10.80.2*) वेद मनुष्यों को प्रेरित करते हैं कि तुम अग्नि में शोधक द्रव्यों की आहुति देकर वायुमंडल को शुद्ध करो– *आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम्* (*साम. 63*)।

अग्निहोत्र का उचित समय सायं और प्रातः बताया गया है। इसका कारण यह है कि सायं किए गए अग्निहोत्र वायुमण्डल को प्रातःकाल तक शुद्ध रखते हैं और प्रातः किए गए अग्निहोत्र से वायुमण्डल सायंकाल तक शुद्ध रहता है। अग्निहोत्र ऐसी विशाल, दिव्य, दीप्तिमयी, निश्चल, कल्याणदायिनी, अखण्डित, निश्चित रूप से आगे ले जाने वाली, विधिविधान रूपी सुन्दर चप्पुओं वाली, निर्दोष, न चूने वाली नौका है जो सदा यजमान की रक्षा करती है (*यजुर्वेद 21.6*)। अग्निहोत्र करने से आयु बढ़ती है, प्राण सबल होता है, नेत्र ज्योति सशक्त होती है, श्रोत्र और वाणी शक्तिवान होते हैं, मन और आत्मा सुदृढ़ और सबल होते हैं (*यजुर्वेद 18.29*)।

वेदों में वायु, जल आदि की शुद्धि के लिए अग्नि में *गोघृत एवं गूगल, पिप्पली, अजशृंगी* आदि औषधियों की आहुति की चर्चा मिलती है। गूगल के संबंध में अथर्ववेद में लिखा है कि जिसे गूगल औषध की सुगन्ध प्राप्त होती है उसे रोग पीड़ित नहीं करते – अग्निहोत्र की अग्नि में डाली हुई घृत, गूगल आदि की हवि प्रदूषित वायुमंडल के प्रदूषण को दूर करके उसे स्वच्छ, सुगन्धित, रोगहर वायु में परिणत कर देती है। गोघृत में प्रदूषण को दूर करने की अद्‌भुत क्षमता है (*अथर्वेद 19.38.1*)।

अग्निहोत्र वायु, जल, मिट्‌टी, वनस्पति आदि सभी के प्रदूषण को दूर करने में सहायक होता है। वायु अग्निहोत्र की हवि की सुगन्ध को चतुर्दिक् फैलाती है। सूर्य–रश्मियों के साथ मिलकर वायु अग्नि में आहुत हवियों को और भी अधिक लोकोपयोगी बना देती है– *तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मि सूर्ये सचा* (*वही, मंत्र 3*) यदि वायु प्रदूषित भी है तो भी हविर्गन्ध से युक्त होकर वह शुचि हो जाता है। वायु अग्निहोत्र से शुद्ध होकर हमारे *प्राण*, अपान एवं व्यान की रक्षा करता है। दिन, रात जो विभिन्न प्रकार का प्रदूषण उत्पन्न होता रहता है अग्निहोत्र से उसे परिशुद्धता मिलती है (*यजु 20.15*)।

पर्यावरण प्रदूषण एवं संरक्षण

वेदों में पर्यावरण के संरक्षण के महत्व को उद्‌घाटित करते हुए मानव – मात्र को उसकी संरक्षा में उदत्त रहने का आह्‌वान किया गया है। पर्यावरण संरक्षण के लिए मनुष्य के अन्दर *सत्य, मृदु, संकल्प, तप, ज्ञान* तथा *त्याग* के गुणों का होना बहुत ही आवश्यक है। इन्हीं गुणों से ही पृथ्वी का संरक्षण किया जा सकता है (*अथर्ववेद 12.1.1*)।

वेदों में पशु, पक्षी और वनस्पतियों का संदर्भ एवं उल्लेख भारतीय संस्कृति के मूलभूत मूल्यों को रेखांकित करता है। यजुर्वेद में भी इसका उल्लेख मिलता है कि इस जगत के समस्त प्राणियों को मित्रवत् देखो। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वेदों में शांति की प्रार्थना की गई है।

ॐ द्यौः शान्तिरवरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। –यजुर्वेद

अंतरिक्ष शांतिदाता बना रहे। वायुमंडल शांत बना रहे। पृथ्वी शांत बनी रहे। जल भी शांत बना रहे। वनस्पति शांत बनी रहे। इस प्रकार स्पष्ट है कि आज पर्यावरण के प्रति सजग और सचेत होने की आवश्यकता है।

स्थल मंडल संरचना एवं संरक्षण

स्थल मंडल पृथ्वी का ठोस भाग है। ब्रह्माण्ड का मात्र 29 प्रतिशत भाग ही महाद्वीप, द्वीप तथा धरती का है। पृथ्वी तो रसायनों का घर है। मानव इनका अन्धाधुन्ध दोहन करके पृथ्वी का नाश न करे जो आज लोभवश कर रहा है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में अनेक शक्तियों से सम्पन्न औषधियों (*12.1.17*) अन्न तथा फल देने वाली कृषि (*12.1.3,4*) तथा अनेक वृक्ष तथा वनस्पतियों (*12.1.17*) का उल्लेख है जिनका संरक्षण तथा उचित प्रयोग मानव से सदैव अपेक्षित रहा है। इस सूक्त के 35वें मंत्र में भूमि को किसी भी प्रकार की क्षति न पहुंचाने का स्पष्ट रूप से निषेध है तथा स्वाभाविक तरीके से की जाने वाली कृषि को प्रधानता दी गई है।

स्वच्छ पर्यावरण केवल मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए ही आवश्यक नहीं है वरन् उत्तम खेती और फसल के

लिए भी आवश्यक हैं। यदि पर्यावरण स्वच्छ होगा तो अच्छी वर्षा होगी जिससे फसल भी अच्छी होगी जो अन्तत्वोगत्वा मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त अपरिहार्य है। आज जो गंदे नालों के पानी से उगाई गई सब्जियां आदि खाने को मिलती हैं– वह स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालती हैं। स्वच्छ पर्यावरण का होना कृषि के लिए आवश्यक है (*अथर्ववेद 3.24.3–4*)। वर्षा का जल नदियों में एकत्र होकर और झरनों, कूपों, नालियों से खेती आदि में पहुंचकर दरिद्रता आदि मिटाकर संसार को लाभ पहुंचाता है। अथर्ववेद के 12वें काण्ड के प्रथम सूक्त में पृथ्वी का महत्व प्रदर्शित करते हुए सभी प्राणियों को पृथ्वी के पुत्र कहा गया है – *माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।* पृथ्वी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि 'भोजन और स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियां इस भूमि पर ही उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता और मेघ पिता है; क्योंकि वर्षा के रूप में पानी बहाकर यह पृथ्वी में गर्भाधान करता है। पृथ्वी में नाना प्रकार की धातुएं ही नहीं, वरन् जल और खाद्यान्न, कन्द–मूल भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, मनुष्यों को उससे लाभ उठाना चाहिए।'

वेदों में कहा गया है कि नदी, खानों, समुद्रों तथा पर्वतों से हम उतना ही ग्रहण करें जो हमारे लिए पर्याप्त तथा सुखकारी हो क्योंकि यदि इसके विपरीत किया तो पृथ्वी कांपने लगती है– *भूमिर्यामूषु रेजते* (*ऋ 8.20.5*)। अथर्ववेद में पृथ्वी प्राकृतिक सम्पदा के विषय में कहा गया है कि जो विद्वान मनुष्य पृथ्वी को खोजते हैं, वे खानों में से अनेक रत्न और सुवर्ण आदि पाकर प्रसन्नचित्त होते हैं।

पृथ्वी के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि इसमें पाए जाने वाले रसायनों का संतुलन न बिगड़ने दें। यह पृथ्वी गुरूत्वशक्ति से सम्पन्न है अतः इसका संरक्षण परम आवश्यक है। बहुत ही सुंदर शब्दों में ऋग्वेद में कहा गया है कि यह द्युलोक, पृथ्वीलोक, वनस्पतियां तथा जल एक बार ही उत्पन्न होता है, पुनः–पुनः नहीं अतः इसका संरक्षण आवश्यक है (*ऋग्वेद 6.48.22*)।

आज अंधाधुंध शहरीकरण, औद्योगिकीकरण के कारण वन तेजी से काटे जा रहे हैं। मिट्टी ढीली पड़ती जा रही है। खेत अनुपजाऊ हो गए हैं। पेड़ों के अभाव में वर्षा ऋतु भी अनियन्त्रित हो गई है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्य–समस्या मिट्टी के प्रदूषण से फैली है जो मानव जीवन के लिए सर्वथा हानिकारक है। हमें वेदों में निहित भावना का अनुकरण करके पृथ्वी संरक्षण के प्रयास करने चाहिए।

जलमंडल–संरचना और संरक्षण

इस पृथ्वी का लगभग तीन चौथाई भाग जल है। सभी जीवों को जल की आवश्यकता होती है। हाईड्रोजन तथा आक्सीजन की आवश्यकता पूर्ति भी जल से होती है। पृथ्वी पर 1.386 बिलियन क्यूबिक किलोलीटर जल है जिसका लगभग 97 प्रतिशत अर्थात 1.320 बिलियन क्यूबिक किलोलीटर समुद्री जल है। जल झील, तालाब, नदी तथा कूप आदि में मिलता है जो प्राणिमात्र के लिए उपयोग में आता है। *ऋग्वेद (5.53.9)* में कहा गया है कि पृथ्वी पर जल निरंतर बहता रहे और वर्षा द्वारा इसमें निरंतर वृद्धि होती रहे। वर्षा के लिए यज्ञ किए जाते हैं। यज्ञों की महत्ता का वर्णन जगह–जगह मिलता है। पृथ्वी सूक्त में कहा गया है कि वन तथा वृक्ष पृथ्वी पर वर्षा लाते हैं– वृक्ष ही मिट्टी को बहने से रोकते हैं– उसका संरक्षण करते है। बाढ़ और सूखे– दोनों का ही प्रतिरक्षण वृक्षों से होता है। देवों द्वारा बसाए गए नगर तथा अच्छे उद्योगों का उल्लेख भी पर्यावरण प्रदूषण से बचाए रखने की ओर एक संकेत है। इससे पृथ्वी सभी पदार्थों से पूर्ण तथा रमणीय रहती है। यही कारण है कि अन्यायपूर्वक पृथ्वी पर वास करने वालों को खदेड़ने की बात पृथ्वी सूक्त में (*अथर्ववेद 12.1.43*) कही गई है।

वर्तमान सामाजिक जीवन में जल को प्रदूषित करने की क्रिया ही सर्वत्र परिलक्षित होती है। उसके परिशोधन अथवा संरक्षण में व्यक्ति स्तर पर या समाज स्तर पर अवदान नगण्य रहता है। गंगा जैसी पवित्र नदी जिसके जल को अमृत स्वरूप माना गया है– आज गंदा और प्रदूषित कर दिया गया है। भूमि सूक्त शुद्ध जल की बात करता है – *शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु।* (*अथर्ववेद 12.1.30*)। विश्व के प्राचीनतम 'साहित्य' ऋग्वेद में पांच मुख्य तत्वों में जल की दैवीय रूप मानकर मंत्रों से स्तुति की गई है। यह सम्पूर्ण जगत जल से व्याप्त है। अतएव जल 'आपस्'

कहलाया अर्थात् इस सृष्टि के सभी पदार्थ आपस् से ही उत्पन्न हुए हैं। अतएव आपस् को दिव्य तत्व मानकर वरुण को उसका देवता माना गया है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में भी कहा गया है कि सृष्टि के पूर्व में चारों ओर कारणात्मक जल ही विद्यमान था। जल के दो रूप हैं – स्थूल तथा मूल। मूल जल कही नष्ट नहीं होता अतएव 'अमृत' कहलाता है, जल की इसी महत्ता के कारण अथर्ववेद में सर्वप्रथम जल की ही स्तुति आती है।

सम्पूर्ण प्राणियों, वनस्पतियों तथा औषधियों में सार तत्व के रूप में जल ही विद्यमान है, अतः इसे परम रस कहा गया है। यह सभी प्राणियों में प्राण का संचार करने के कारण प्राण कहलाता है। ये क्रियात्मक यज्ञ भी आपस् रूप में हैं। श्रुति में कहा गया है कि यह सूर्य आपस् में ही उदय होता है और आपस् में ही अस्त होता है। यह स्वयं पवित्र है अतः सभी को पवित्र करने वाला तत्व है। यह अन्न का उत्पादक होने से अन्न भी कहलाता है।

वेदों में जल–प्रदूषण की समस्या पर व्यापक चिन्तन–मनन मिलता है। मकान के पास ही शुद्ध जल से भरा हुआ जलाशय होना चाहिए। 'अच्छे प्रकार से रोग रहित तथा रोगनाशक इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करने से मैं मृत्यु से बचा रहूंगा।' (*अथर्ववेद 3.12.9*)। इस प्रकार के उद्घोष वेदों में अनेक स्थान पर मिलते हैं। वेदों में शुद्ध जल को मनुष्य को दीर्घ आयु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी माना गया है।

वैदिक युगीन ऋषि जानते थे कि जल चेहरे का सौन्दर्य तथा कोमलता और कान्ति बढ़ाने में औषधि–रूप है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देने वाला, अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्व है।

वेदों में यह भी उल्लेख मिलता है कि जल से ही देखने–सुनने एवं बोलने की शक्ति प्राप्त होती है। भूख, दुःख, चिन्ता, मृत्य का त्याग करके अमृत (आनन्द) प्राप्त होता है। अर्थात् देखने–सुनने एवं बोलने की शक्ति बिना पर्याप्त जल के उपयोग के नहीं आती। जल ही जीवन का आधार है। अधिकांश जीव जल में ही जन्म लेते हैं और उसी में रहते हैं। जल की स्तुति करते हुए उसे औषधि स्वरूप माना गया है (*ऋग्वेद 10.9.3*)।

वायुमंडल – संरचना और संरक्षण

स्थल मंडल तथा जल मंडल के ऊपर गैसों का आवरण बनाने वाला वायुमंडल है। इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है। इसमें गैसों की उपस्थिति 200 मील ऊपर तक मिलती है। वायुमंडल में लगभग आक्सीजन 21 प्रतिशत, नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, कार्बनडाईआक्साइड 0.04 प्रतिशत, जल वाष्प अनियमित मात्रा में तथा निष्क्रिय गैसें बहुत थोड़ी मात्रा में उपस्थित हैं।

परमाणु अस्त्रों–शस्त्रों की होड़ ने आज विश्व को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। परमाणु परीक्षणों की होड़ पर्यावरण को कितना प्रदूषित कर रही है– इसका आकलन सहज ही किया जा सकता है। पेट्रोल–डीजल के वाहनों, कारखानों आदि से निकलता धुआं, जहरीली गैस स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध हो रही है। शैशवकाल में ही श्वास–दमे की बीमारियां बच्चों को चपेट में लेती जा रही हैं। सजीव जगत के लिए पर्यावरण की रक्षा में वायु की स्वच्छता का प्रथम स्थान है। बिना प्राणवायु (ऑक्सीजन) के क्षणभर भी जीवित रहना संभव नहीं है। ईश्वर ने प्राणि जगत के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी के चारों ओर वायु का सागर फैला रखा है। हमारे शरीर के अंदर रक्त–वाहिनियों में बहता हुआ रक्त बाहर की तरफ दबाव डालता रहता है, यदि इसे संतुलित नहीं किया जाए तो शरीर की सभी धमनियां फट जाएंगी तथा जीवन नष्ट हो जाएगा। वायु का सागर इससे हमारी रक्षा करता है। पेड़–पौधे ऑक्सीजन देकर क्लोरोफिल की उपस्थिति में, इसमें से कार्बनडाईऑक्साइड अपने लिए रख लेते हैं और ऑक्सीजन हमें देते हैं। इस प्रकार पेड़–पौधे वायु की शुद्धि द्वारा हमारी प्राण–रक्षा करते हैं।

वायु की शुद्धि जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वायु को शुद्ध तथा अशुद्ध के रूप में वर्गीकृत करते हुए कहा गया है कि 'प्रत्यक्षभूत दोनों प्रकार की हवाएं सागर–पर्यन्त और समुद्र से दूर प्रदेश–पर्यन्त बहती रहती हैं। हे साधक! एक तो ये तेरे लिए बल को प्राप्त कराती है और एक जो दूषित है, उसे दूर फेंक देती है' (*ऋ. 10.137.2*) हजारों वर्ष पूर्व वैदिक युगीन भारतीय समाज को यह ज्ञान था कि हवा कई प्रकार के गैसों का मिश्रण है, जिनके अलग–अलग गुण एवं अवगुण हैं; इनमें ही

प्राणवायु (ऑक्सीजन) भी है। 'इस वायु के गृह में जो यह अमरत्व की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।'

शुद्ध वायु को अमूल्य निधि के रूप में मान्यता दी गई थी – शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है, *वात आ वातु भेषजं* – जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी है, आनन्ददायक है। *शंभु मयोभु नो हृदे* – वह उसे प्राप्त कराता है और हमारी आयु को बढ़ाता है।' *प्रण आयूंषि तारिषत्।* सभी ऋतुओं, दिन, रात आदि का नियमित काल पर आना पर्यावरण की शुद्धि का प्रतीक है। अथर्ववेद में कहा गया है कि पृथ्वी का संरक्षण मानव का कर्त्तव्य है और वह तब ही संभव है जब वह प्रतिबद्ध और कृत संकल्प होकर पृथ्वी के संरक्षण के लिए यज्ञ आदि अच्छे कार्य करे। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह द्युलोक (आकाश) तथा भूलोक (धरती मां) का संरक्षण करे क्योंकि वह पुत्र है तथा (धरती और आकाश) माता–पिता के प्रति संरक्षण और पोषण करना उसका कर्त्तव्य है (*अथर्ववेद 12.1.12*)।

उपसंहार

आज भौतिकतावादी युग में पर्यावरण संकट भयावह होता जा रहा है। आज स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि जीवन के लिए अनिवार्य जल, थल, वायु तीनों प्रदूषण से ग्रस्त हैं। उसके अतिरिक्त ध्वनि प्रदूषण और रेडियो एक्टिव प्रदूषण का खतरा भी सिर पर मंडराने लगा है। पृथ्वी की सतह पर 43 प्रतिशत क्षेत्र सूखे, बंजर व रेगिस्तान के रूप में विद्यमान है, उसमें से 67 प्रतिशत क्षेत्र मानव निर्मित है। अर्थात् मनुष्य अपनी कब्र शनैः–शनैः स्वयं ही खोदता जा रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 51 प्रतिशत प्रदूषण उद्योगों से, 27 प्रतिशत प्रदूषण वाहनों से, 8 प्रतिशत फसल जलाने से, तथा 14 प्रतिशत घरेलू व अन्य कारणों से होता है। वस्तुतः कृषि में प्रयुक्त कीटनाशक दवाएं, कारखानों से निकलने वाले अवशेष और अस्पतालों से निकली गंदगी से नदियों का जल तो प्रदूषित होता ही जा रहा है, इसके अतिरिक्त गली–मौहल्लों में लगी छोटी–बड़ी फैक्ट्रियों, तरह–तरह के जेनरेटर, वाहन, वायु प्रदूषण के साथ–साथ ध्वनि प्रदूषण भी फैलाते जा रहे हैं।

वेदों में यत्र–तत्र सृष्टि–संरचना को समझाने का प्रयत्न किया गया है, सृष्टि के नैसर्गिक सौन्दर्य को बारंबार वर्णित किया है। वेदों का अनुशीलन करते समय हमें लगता है कि वेद निरंतर हमें पर्यावरण के प्रति सतर्क एवं सावधान करते हैं। वैदिक संहिताओं में जहां एक ओर वृक्ष तथा वनस्पतियों के संरक्षण और उनकी पूजा की बात कहकर वर्षा के महत्व को समझाया गया है वहां दूसरी ओर विपरीत आचरण करने वालों को सही मार्ग पर चलने के लिए सावधान किया गया है।

पर्यावरण के तीनों मंडल प्राणी जगत के जीवन के लिए उपयोगी हैं। वह जलमंडल से जल, स्थलमंडल से भोजन तथा वायुमंडल से प्राण–वायु प्राप्त करता है। संक्षेप में, ये तीनों मंडल एक–दूसरे के पूरक हैं, इनमें से एक के नष्ट होने पर जीव का अस्तित्व संभव नहीं है। इन तीनों मंडलों से प्राप्त ऊर्जा का अनुपाततः प्रयोग करके हम पर्यावरण को संरक्षित कर सकते है। इनकी ऊर्जा का अनुपात से अधिक प्रयोग ही प्रदूषण कहलाता है।

निष्कर्ष यह है कि हमें प्रकृति के साथ तादात्मय स्थापित करना चाहिए। उसके प्रकृत स्वरूप को नष्ट न करके उसका समुचित संरक्षण करना चाहिए। वेदों में प्रकृति के स्वरूप, पर्यावरण–संरचना और उसके स्वरूप के संबंध में विस्तृत विधान मिलता है। यदि मानव उक्त विधान का परिपालन करे और जो निषेधात्मक पक्ष है उनका उल्लंघन न करे– तो मानव कल्याण और मानव हित के लिए उपयोगी होगा। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है – पर्यावरण संरक्षण। वायु, जल भूमि, आकाश, अन्न आदि पर्यावरण के सभी पदार्थों की शुद्धि के लिए वेद हमें जागरूक करते हैं तथा आई हुई अस्वच्छता को दूर करने के लिए प्रेरित करते हैं। पर्यावरण की शुद्धि के लिए वेद वनस्पति उगाना, अग्निहोत्र करना, अग्नि, सूर्य एवं औषधियों का उपयोग करना आदि उपाय सुझाते हैं। भौतिकतावादी युग में हमें वेदों में बताए मार्ग पर चलना चाहिए। आज पर्यावरण संरक्षण के प्रति समस्त मानव समुदाय को सचेत और जागरूक बनाए जाने और वेदों में उल्लिखित विचारों से प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता है। ■